॥ श्रीहरिः ॥

383

भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी प्राप्तिके लिये

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रकाशकका निवेदन

भगवान् श्रीकृष्णका प्रेम जीवनका सर्वोपरि साध्य है। भगवत्कृपाप्राप्त जिन भाग्यवानोंको दिव्य भगवत्प्रेमका रस मिल गया है, वे संसारबन्धनसे मुक्त होकर भी मुक्ति नहीं चाहते; अनन्तकालतक इस दिव्य प्रेम-सुधा-समुद्रमें ही डूबे रहना चाहते हैं। पर यह है बहुत ही दुर्लभ। इस भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये विरक्त त्यागी ऋषि-मुनियोंने कल्पोंतक तपस्या— साधना की थी—ऐसे इतिहास मिलते हैं। पर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे परम दुर्लभ पदार्थ भी सुलभ हो जाता है। वे कृपा करके अपना दुर्लभ प्रेम अनायास ही प्रदान कर सकते हैं। उनकी कृपा तथा प्रेमकी सहज प्राप्तिके लिये ही देवी पार्वतीजीके पूछनेपर भगवान् शंकरने यह स्तोत्र बतलाया था। इसीको हिंदी अनुवाद-सहित पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। भावुक भक्तहृदयके पुरुष और महिलाएँ श्रद्धा-विश्वासके साथ इस स्तोत्रका पाठ-अनुष्ठान करके दुर्लभ लाभ उठावें, यह निवेदन है।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी प्राप्तिके लिये

भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नता तथा प्रेमकी सहज ही प्राप्तिके लिये महादेवी श्रीपार्वतीजीके पूछनेपर भगवान् श्रीशंकरने उन्हें एक ऐसा स्तोत्र बताया, जिसका नियम-संयम तथा श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करनेसे बिना जप, बिना सेवा तथा बिना ही पूजाके श्रीकृष्णकी कृपा तथा दुर्लभ प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है। यह महत्त्वपूर्ण स्तोत्र 'माहेश्वरतन्त्र'के ४७वें पटलका है। नीचे इसीको हिंदी-अनुवादसहित दिया जा रहा है—

पार्वत्युवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि यथा कृष्णः प्रसीदति।
विना जपं विना सेवां विना पूजामपि प्रभो॥ १॥

यथा कृष्णः प्रसन्नः स्यात्तमुपायं वदाधुना।
अन्यथा देवदेवेश पुरुषार्थो न सिद्ध्यति॥ २॥

पार्वती बोलीं—भगवन्! प्रभो! जिस उपायसे बिना जप, बिना सेवा और बिना पूजाके भी भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हों, वह मैं सुनना चाहती हूँ। देवदेवेश्वर! जिस प्रकारसे भी भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हों, वह उपाय इस समय मुझे बताइये; क्योंकि श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके बिना कोई पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता॥ १-२॥

शिव उवाच

साधु पार्वति ते प्रश्नः सावधानतया शृणु।
विना जपं विना सेवां विना पूजामपि प्रिये॥ ३॥
यथा कृष्णः प्रसन्नः स्यात्तमुपायं वदामि ते।
जपसेवादिकं चापि बिना स्तोत्रं न सिद्ध्यति॥ ४॥

भगवान् शिवने कहा—पार्वती! तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है। अब तुम सावधानीके साथ सुनो प्रिये! बिना जप, बिना सेवा और बिना पूजाके भी

जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो सकते हैं, वह उपाय मैं तुम्हें बताता हूँ। वह उपाय है एक स्तोत्र, जिसके बिना जप और सेवा आदि भी सिद्ध नहीं होते हैं॥ ३-४॥

कीर्तिप्रियो हि भगवान् परमात्मा पुरुषोत्तमः।
जपस्तन्मयतासिद्ध्यै सेवा स्वाचाररूपिणी॥ ५॥
स्तुतिः प्रसादनकरी तस्मात् स्तोत्रं वदामि ते।

भगवान् परमात्मा पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अपने गुण-कीर्तनसे प्रसन्न होते हैं। उनका जप उनमें तन्मयताकी सिद्धिके लिये किया जाता है। भगवान्की सेवा सदाचार-स्वरूपा है और उनकी स्तुति उन्हें प्रसन्न करनेवाली—उनका कृपा-प्रसाद प्राप्त करानेवाली है। इसलिये मैं तुमसे स्तोत्रका वर्णन करता हूँ॥ ५$\frac{1}{2}$॥

सुधाम्भोनिधिमध्यस्थे रत्नद्वीपे मनोहरे॥ ६॥
नवखण्डात्मके तत्र नवरत्नविभूषिते।
तन्मध्ये चिन्तयेद् रम्यं मणिगेहमनुत्तमम्॥ ७॥
परितो वनमालाभिर्ललिताभिर्विराजिते।
तत्र संचिन्तयेच्चारु कुट्टिमं सुमनोहरम्॥ ८॥

पहले निम्नांकित प्रकारसे भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। ध्यानमें यह देखे कि सुधासागरके बीच एक मनोहर रत्नद्वीप है। उस द्वीपके नौ खण्ड हैं तथा वह नौ रत्नोंसे विभूषित है। उस रत्नद्वीपके मध्यभागमें परम उत्तम एवं रमणीय मणिमय मन्दिर है, जो चारों ओरसे ललित वनमालाओंद्वारा विराजित है। उस मणिमय भवनमें परम सुन्दर एवं अत्यन्त मनोहर मणिजटित पक्का आँगन है—ऐसा ध्यान करें॥ ६—८॥

चतुःषष्ठ्या मणिस्तम्भैश्चतुर्दिक्षु विराजितम्।
तत्र सिंहासने ध्यायेत् कृष्णं कमललोचनम्॥ ९॥

वह आँगन चारों दिशाओंमें सोलह-सोलहके क्रमसे चौंसठ मणिनिर्मित खम्भोंद्वारा सुशोभित है, उस मणिस्तम्भ-मण्डित आँगनमें एक सुन्दर सिंहासन है, जिसके ऊपर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं॥ ९॥

अनर्घ्यरत्नजटितमुकुटोज्ज्वलकुण्डलम्।
सुस्मितं सुमुखाम्भोजं सखीवृन्दनिषेवितम्॥ १०॥

स्वामिन्याश्लिष्टवामाङ्गं परमानन्दविग्रहम्।
एवं ध्यात्वा ततः स्तोत्रं पठेद् भुवि जितेन्द्रियः ॥ ११ ॥

उनके स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे—वे मस्तकपर बहुमूल्य रत्नजटित मुकुट धारण किये हुए हैं। उनके कानोंमें दिव्य दीप्तिसे परमोज्ज्वल कुण्डल झिलमिला रहे हैं। उनके अधरपर मधुर मनोरम मुस्कान है, जिससे भगवान्‌के मुखारविन्दका सौन्दर्य और भी खिल उठा है। झुंड-की-झुंड सखियाँ उनकी सेवामें संलग्न हैं। स्वामिनी श्रीराधा उनके वामाङ्गसे सटी बैठी हैं। श्रीहरिका श्रीविग्रह परमानन्दमय है। इस प्रकार ध्यान करके इन्द्रियोंको पूर्ण वशमें रखते हुए भूमिस्थ आसनपर बैठकर निम्नांकित स्तोत्रका पाठ करे॥ १०-११ ॥

अथ स्तोत्रम्

कृष्णं कमलपत्राक्षं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
सखीयूथान्तरचरं प्रणमामि परात्परम्॥ १२ ॥
श्रृंगाररसरूपाय परिपूर्णसुखात्मने।
राजीवारुणनेत्राय कोटिकन्दर्परूपिणे॥ १३ ॥

जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान तथा श्रीविग्रह सच्चिदानन्दस्वरूप है, जो सखियोंके यूथके भीतर विचर रहे हैं—उन परात्पर परमात्मा श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ। जो शृंगार-रसरूप, परिपूर्ण सुखदस्वरूप, कमलके समान कुछ-कुछ लाल नेत्रोंवाले और अपने रूप-लावण्यसे करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करनेवाले हैं (उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है)॥ १२-१३॥

वेदाद्यगम्यरूपाय वेदवेद्यस्वरूपिणे।
अवाङ्मनसविषयनिजलीलाप्रवर्तिने ॥ १४॥
नमः शुद्धाय पूर्णाय निरस्तगुणवृत्तये।
अखण्डाय निरंशाय निरावरणरूपिणे॥ १५॥

जिनका स्वरूप वेद आदिसे भी अगम्य है, वेदवेद्य ब्रह्म जिनका स्वरूप है तथा जो मन, वाणीके अगोचर (अचिन्तनीय एवं अनिर्वचनीय) अपनी लीलाके प्रवर्तक हैं (उन श्रीकृष्णको नमस्कार है)। प्राकृत गुणोंकी वृत्तियाँ जहाँ नहीं पहुँच पातीं; जो परम

शुद्ध परिपूर्ण, अखण्ड, अंशरहित और निरावृतस्वरूप हैं—उन श्रीकृष्णको नमस्कार है॥ १४-१५ ॥

संयोगविप्रलम्भाख्यभेदभावमहाब्धये ।
सदंशविश्वरूपाय चिदंशाक्षररूपिणे ॥ १६ ॥
आनन्दांशस्वरूपाय सच्चिदानन्दरूपिणे ।
मर्यादातीतरूपाय निराधाराय साक्षिणे ॥ १७ ॥

जो संयोग और विप्रलम्भ नामक शृंगार भेदके अनन्त भावोंके महासागर हैं, जिनका सदंश जगद्रूप है, चिदंश अक्षररूप है और आनन्दांश साक्षात् स्वरूप है, इस प्रकार जो सच्चिदानन्द-विग्रह हैं, जिनका रूप असीम है, जो परकीय आधारसे शून्य—स्वयं सर्वाधार एवं सर्वसाक्षी हैं—उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है॥ १६-१७ ॥

मायाप्रपञ्चदूराय नीलाचलविहारिणे ।
माणिक्यपुष्परागाद्रिलीलाखेलप्रवर्तिने ॥ १८ ॥
चिदन्तर्यामिरूपाय ब्रह्मानन्दस्वरूपिणे ।
प्रमाणपथदूराय प्रमाणाग्राह्यरूपिणे ॥ १९ ॥

मायाकालुष्यहीनाय नमः कृष्णाय शम्भवे।
क्षरायाक्षररूपाय क्षराक्षरविलक्षिणे॥ २०॥

जो मायामय प्रपञ्चसे दूर रहकर नीलाचलपर विहार करते हैं, माणिक्य और पुष्पराग (पुखराज) मय पर्वत-शिखरोंपर अपनी लीलाके खेल चलाते रहते हैं, अन्तर्यामी चेतन जिनका रूप है, जो ब्रह्मानन्दस्वरूप हैं; प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके पथसे जो बहुत दूर हैं, जिनका स्वरूप प्रमाणोंसे अग्राह्य (अप्रमेय) है, जिन्हें मायाका कालुष्य छू नहीं सका है, जो शम्भु (कल्याणनिकेतन), क्षररूप, अक्षररूप और क्षर-अक्षर दोनोंसे विलक्षण रूपवाले हैं—उन श्रीकृष्णको नमस्कार है॥ १८—२०॥

तुरीयातीतरूपाय नमः पुरुषरूपिणे।
महाकामस्वरूपाय कामतत्त्वार्थवेदिने॥ २१॥
दशलीलाविहाराय सप्ततीर्थविहारिणे।
विहाररसपूर्णाय नमस्तुभ्यं कृपानिधे॥ २२॥

जिनका रूप तुरीयावस्थासे भी अतीत है, जो पुरुषरूप, महाकामस्वरूप तथा कामतत्त्वके परम

तात्पर्यको जाननेवाले हैं—उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। कृपानिधे! आपने दस अवतारविग्रह धारण करके उनके अनुरूप लीलाविहार किये हैं, आप सप्ततीर्थविहारी हैं और विहार-रससे परिपूर्ण हैं। आपको नमस्कार है॥ २१-२२॥

विरहानलसंतप्तभक्तचित्तोदयाय च।
आविष्कृतनिजानन्दविफलीकृतमुक्तये ॥ २३ ॥
द्वैताद्वैतमहामोहतमःपटलपाटिने ।
जगदुत्पत्तिविलयसाक्षिणेऽविकृताय च॥ २४॥

विरहाग्निसे संतप्त भक्तजनोंके चित्तमें उदित होनेवाले तथा अपने स्वरूपभूत आनन्दको प्रकट करके मोक्षको भी व्यर्थ कर देनेवाले आप भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। आप द्वैताद्वैतरूप महामोहमय अन्धकारराशिको विदीर्ण करनेवाले, संसारकी सृष्टि और संहारके साक्षी तथा नित्य निर्विकार हैं। आपको मेरा सादर नमस्कार है॥ २३-२४॥

ईश्वराय निरीशाय निरस्ताखिलकर्मणे।
संसारध्वान्तसूर्याय पूतनाप्राणहारिणे॥ २५॥

आप सबके ईश्वर हैं, किंतु आपका ईश्वर कोई नहीं है। समस्त शुभाशुभ कर्मको आपने निकाल फेंका है—वे आपको लिप्त नहीं कर सकते। संसाररूपी अन्धकारका संहार करनेके लिये आप सूर्यस्वरूप हैं। पूतनाके प्राणोंका हरण करनेवाले आप भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है॥ २५ ॥

रासलीलाविलासोर्मिपूरिताक्षरचेतसे ।
स्वामिनीनयनाम्भोजभावभेदैकवेदिने ॥ २६ ॥
केवलानन्दरूपाय नमः कृष्णाय वेधसे।
स्वामिनीकृपयाऽऽनन्दकन्दलाय तदात्मने॥ २७॥

आपका अक्षर (निर्विकार या अविनाशी) चित्त रासलीला-विलासकी तरङ्गोंसे परिपूरित है। स्वामिनी श्रीराधाके नेत्रकमलोंसे प्रकट होनेवाले अनन्त भावभेदोंके एकमात्र आप ही ज्ञाता हैं। आपको नमस्कार है। आप केवलानन्दस्वरूप हैं। स्वामिनी श्रीराधापर कृपा करके उनके लिये आनन्दकन्द बन जाते हैं। श्रीराधा ही आपकी आत्मा हैं तथा आप ही सबके स्रष्टा हैं। आप परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है॥ २६-२७॥

संसाराराण्यवीथीषु परिभ्रान्तामनेकधा।
पाहि मां कृपया नाथ त्वद्वियोगाधिदुःखिताम्॥ २८॥
त्वमेव मातृपित्रादिबन्धुवर्गादयश्च ये।
विद्या वित्तं कुलं शीलं त्वत्तो मे नास्ति किंचन॥ २९॥

नाथ! मैं संसाररूपी वनकी वीथियोंमें अनेक प्रकारसे भटक रही हूँ और आपके वियोगकी व्यथासे दुःखमें डूबी हुई हूँ। आप कृपा करके मेरी रक्षा करें। आप ही मेरे माता-पिता और बन्धुवर्ग आदि सब कुछ हैं। विद्या, धन, शील और कुल भी आप ही हैं। आपके सिवा मेरा कोई नहीं, कुछ भी नहीं है॥ २८-२९॥

यथा दारुमयी योषिच्चेष्टते शिल्पिशिक्षया।
अस्वतन्त्रा त्वया नाथ तथाहं विचरामि भोः॥ ३०॥
सर्वसाधनहीनां मां धर्माचारपराङ्मुखाम्।
पतितां भवपाथोधौ परित्रातुं त्वमर्हसि॥ ३१॥

नाथ! जैसे कठपुतली अपने शिल्पी (सूत्रधार)-की शिक्षाके अनुसार चेष्टा करता है, उसी प्रकार मैं भी आपके अधीन होकर आपकी इच्छाके अनुसार ही विचरती हूँ। मैं सब साधनोंसे हीन तथा धर्म और

आचारसे विमुख होकर भवसागरमें गिरी हुई हूँ। आप कृपया मेरा परित्राण (उद्धार) करें॥ ३०-३१॥

मायाभ्रमणयन्त्रस्थामूर्ध्वाधो भयविह्वलाम्।
अदृष्टनिजसंकेतां पाहि नाथ दयानिधे॥ ३२॥
अनर्थेऽर्थदृशं मूढां विश्वस्तां भयदस्थले।
जागृतव्ये शयानां मामुद्धरस्व दयापर॥ ३३॥

मैं मायाके भ्रमण-यन्त्रमें स्थित हो ऊपर-नीचे आती-जाती रहती हूँ और भयसे व्याकुल हूँ। दयानिधे! मैंने अपने संकेत-स्थानको भी नहीं देखा है। नाथ! मेरी रक्षा कीजिये। दयालो! मैं ऐसी मूढ़ हूँ कि अनर्थको ही अर्थ समझती हूँ, भयदायक स्थानपर भी विश्वस्त (निर्भय) होकर रहती हूँ और जहाँ जागना चाहिये— परमार्थ-साधनके लिये सतत चेष्टा करनी चाहिये, वहीं मैं सोयी हूँ—कर्तव्य-विमूढ़ हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये॥ ३२-३३॥

अतीतानागतभवसंतानविवशान्तराम्।
बिभेमि विमुखीभूय त्वत्तः कमललोचन॥ ३४॥

मायालवणपाथोधिपय:पानरतां हि माम्।
त्वत्सांनिध्यसुधासिन्धुसामीप्यं नय माचिरम्॥ ३५॥

भूत, भविष्य और वर्तमानकी संतान-परम्परासे मेरा अन्त:करण विवश है—बँधा हुआ है। कमलनयन! मैं आपसे विमुख होकर भयभीत हूँ। मायामय खारे पानीके समुद्रमें जलपान-रत हूँ। प्रभो! आप मुझे अपने संनिधानरूपी सुधा-सिन्धुके समीप शीघ्र पहुँचाइये॥ ३४-३५॥

त्वद्वियोगार्तिमासाद्य यज्जीवामीति लज्जया।
दर्शयिष्ये कथं नाथ मुखमेतद्विडम्बनम्॥ ३६॥
प्राणनाथवियोगेऽपि करोमि प्राणधारणाम्।
अनौचिती महत्येषा किं न लज्जयते हि माम्॥ ३७॥

नाथ! आपके वियोगकी पीड़ाको पाकर भी जो मैं जी रही हूँ, यह मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। इस लज्जाके कारण मैं अपना यह कलङ्कित मुख आपको कैसे दिखाऊँगी। प्राणनाथके वियोगमें भी जो मैं प्राण धारण करती हूँ, यह मेरा महान् अनुचित कृत्य क्या मुझे लज्जित नहीं कर रहा है?॥ ३६-३७॥

किं करोमि क्व गच्छामि कस्याग्रे प्रवदाम्यहम्।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते वृत्तयोऽब्धौ यथोर्मयः॥ ३८॥

क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किसके आगे अपना दुःख कहूँ? इत्यादि वृत्तियाँ समुद्रमें लहरोंकी तरह मेरे अन्तःकरणमें उठती और विलीन होती रहती हैं॥ ३८॥

अहं दुःखाकुला दीना दुःखहा न भवत्परः।
विज्ञाय प्राणनाथेदं यथेच्छसि तथा कुरु॥ ३९॥

मैं दीन हूँ और दुःखसे व्याकुल हूँ। आपसे बढ़कर दुःखका नाशक दूसरा कोई नहीं है। प्राणनाथ! ऐसा जानकर आप जैसा चाहें, वैसा करें॥ ३९॥

ततश्च प्रणमेत् कृष्णं भूयो भूयः कृताञ्जलिः।
इत्येतद् गुह्यमाख्यातं न वक्तव्यं गिरीन्द्रजे॥ ४०॥

गिरिराजनन्दिनि! इस प्रकार स्तुति करके भगवान् श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर बारम्बार प्रणाम करे। यह मैंने तुमसे गोपनीय स्तोत्र बताया है। इसको हर-एकके सामने नहीं प्रकट करना चाहिये॥ ४०॥

एवं यः स्तौति देवेशि त्रिकालं विजितेन्द्रियः।
आविर्भवति तच्चित्ते प्रेमरूपी स्वयं प्रभुः॥ ४१॥

देवेश्वरि! जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सायं, प्रातः और मध्याह्न तीनों कालोंमें इस प्रकार स्तुति करता है, उसके चित्तमें प्रेमरूपी प्रभु स्वयं प्रकट होते हैं॥ ४१॥

प्रातः, सायं एवं मध्याह्न—दिनमें तीन बार पाठ करनेपर अनन्तगुना लाभ होता है। यह पाठ प्रतिदिन बिना लाँघा चलना चाहिये। रोग आदिके समय असमर्थ होनेपर किन्हीं सदाचारी ब्राह्मण अथवा घरके दूसरे किसी श्रद्धालु पुरुषके द्वारा कराया जा सकता है। तीव्र उत्कण्ठा तथा विश्वासके साथ, ब्रह्मचर्यका पालन और इन्द्रियसंयम करते हुए इसका नियमित पाठ करनेसे भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा उनके दिव्य प्रेमकी प्राप्ति होती है।

❑❑

ब्रह्मणा कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम्।
सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम्॥
नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरविग्रहम्।
स्थितं जन्तुषु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम्॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्व्यापि जगत्परम्।
सर्वस्वरूपं सर्वेषां बीजरूपं सनातनम्॥

ब्रह्माजी बोले—जो सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, समस्त कारणोंके भी कारण तथा सबके लिये अनिर्वचनीय हैं; उन कल्याणस्वरूप श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका श्रीविग्रह नवीन मेघमालाके समान श्याम एवं सुन्दर है, जो सम्पूर्ण जीवोंमें स्थित रहकर भी उनसे लिप्त नहीं होते, जो साक्षीस्वरूप हैं, स्वात्माराम, पूर्णकाम, विश्वव्यापी, विश्वसे परे, सर्वस्वरूप, सबके बीजरूप और सनातन हैं॥

सर्वाधारं सर्ववरं सर्वशक्तिसमन्वितम्।
सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम्॥

सर्वमन्त्रस्वरूपं च सर्वसम्पत्करं वरम्।
शक्तियुक्तमयुक्तं च स्तौमि स्वेच्छामयं विभुम्॥
शक्तीशं शक्तिबीजं च शक्तिरूपधरं वरम्।
संसारसागरे घोरे शक्तिनौकासमन्वितम्॥

जो सर्वाधार, सबमें विचरनेवाले, सर्वशक्तिसम्पन्न, सर्वाराध्य, सर्वगुरु तथा सर्वमंगलकारण हैं। सम्पूर्ण मन्त्र जिनके स्वरूप हैं, जो समस्त सम्पदाओंकी प्राप्ति करानेवाले और श्रेष्ठ हैं; जिनमें शक्तिका संयोग और वियोग भी है; उन स्वेच्छामय प्रभुकी मैं स्तुति करता हूँ। जो शक्तिके स्वामी, शक्तिके बीज, शक्तिरूपधारी तथा घोर संसारसागरमें शक्तिमयी नौकासे युक्त हैं॥

कृपालुं कर्णधारं च नमामि भक्तवत्सलम्।
आत्मस्वरूपमेकान्तं लिप्तं निर्लिप्तमेव च॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म स्तौमि स्वेच्छास्वरूपिणम्।
सर्वेन्द्रियाधिदेवं त्वामिन्द्रियालयमेव च॥
सर्वेन्द्रियस्वरूपं च विराड्रूपं नमाम्यहम्।
वेदं च वेदजनकं सर्ववेदाङ्गरूपिणम्॥

उन भक्तवत्सल कृपालु कर्णधारको मैं नमस्कार

करता हूँ। जो आत्मस्वरूप, एकान्तमय, लिप्त, निर्लिप्त, सगुण और निर्गुण ब्रह्म हैं; उन स्वेच्छामय परमात्माकी मैं स्तुति करता हूँ। जो सम्पूर्ण इन्द्रियोंके अधिदेवता, आवासस्थान और सर्वेन्द्रिय-स्वरूप हैं; उन विराट् परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ जो वेद, वेदोंके जनक तथा सर्ववेदाङ्गस्वरूप हैं॥

सर्वमन्त्रस्वरूपं च नमामि परमेश्वरम्।
सारात् सारतरं द्रव्यमपूर्वमनिरूपणम्॥
स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च यशोदानन्दनं भजे।
शान्तं सर्वशरीरेषु तमदृष्टमनूहकम्॥
ध्यानासाध्यं विद्यमानं योगीन्द्राणां गुरुं भजे।
रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्॥

उन सर्वमन्त्रमय परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सारसे सारतर द्रव्य, अपूर्व, अनिर्वचनीय, स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र हैं; उन यशोदानन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो सम्पूर्ण शरीरोंमें शान्तरूपसे विद्यमान हैं, किसीके दृष्टिपथमें नहीं आते, तर्कके अविषय हैं, ध्यानसे वशमें होनेवाले नहीं हैं तथा नित्य विद्यमान हैं; उन योगीन्द्रोंके भी गुरु गोविन्दका मैं भजन करता

हूँ। जो रासमण्डलके मध्यभागमें विराजमान होते हैं, रासोल्लासके लिये सदा उत्सुक रहते हैं॥

गोपीभिः सेव्यमानं च तं राधेशं नमाम्यहम्।
सतां सदैव सन्तं तमसन्तमसतामपि॥
योगीशं योगसाध्यं च नमामि शिवसेवितम्।
मन्त्रबीजं मन्त्रराजं मन्त्रदं फलदं फलम्॥
मन्त्रसिद्धिस्वरूपं तं नमामि च परात्परम्।
सुखं दुःखं च सुखदं दुःखदं पुण्यमेव च॥
पुण्यप्रदं च शुभदं शुभबीजं नमाम्यहम्।

तथा गोपाङ्गनाएँ सदा जिनकी सेवा करती हैं; उन राधावल्लभको मैं नमस्कार करता हूँ। जो साधुपुरुषोंकी दृष्टिमें सदैव सत् और असाधु पुरुषोंके मतमें सदा ही असत् हैं, भगवान् शिव जिनकी सेवा करते हैं; उन योगसाध्य योगीश्वर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मन्त्रबीज, मन्त्रराज, मन्त्रदाता, फलदाता, फलरूप, मन्त्रसिद्धिस्वरूप तथा परात्पर हैं; उन श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सुख-दुःख, सुखद-दुःखद, पुण्य, पुण्यदायक, शुभद और शुभ बीज हैं; उन परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वा गाश्च सबालकान्॥
निपत्य दण्डवद् भूमौ रुरोद प्रणनाम च।
ददर्श चक्षुरुन्मील्य विधाता जगतां मुने॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्॥
लभते दास्यमतुलं स्थानमीश्वरसंनिधौ।
लब्ध्वा च कृष्णसांनिध्यं पार्षदप्रवरो भवेत्॥

इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने गौओं और बालकोंको लौटा दिया तथा पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर रोते हुए प्रणाम किया। मुने! तदनन्तर जगत्स्रष्टाने आँखें खोलकर श्रीहरिके दर्शन किये। जो ब्रह्माजीके द्वारा किये गये इस स्तोत्रका प्रतिदिन भक्तिभावसे पाठ करता है, वह इहलोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके धाममें जाता है। वहाँ उसे अनुपम दास्यसुख तथा उन परमेश्वरके निकट स्थान प्राप्त होता है। श्रीकृष्णका सांनिध्य पाकर वह पार्षदशिरोमणि बन जाता है।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मणा कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २०। ३७—५५)

❑❑

गर्गकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

गर्ग उवाच

हे कृष्ण जगतां नाथ भक्तानां भयभञ्जन।
प्रसन्नो भव मामीश देहि दास्यं पदाम्बुजे॥
त्वत्पित्रा मे धनं दत्तं तेन मे किं प्रयोजनम्।
देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रद॥
अणिमादिकसिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो।
ज्ञानतत्त्वेऽमरत्वे वा किंचिन्नास्ति स्पृहा मम॥

गर्गजीने कहा—हे श्रीकृष्ण! हे जगन्नाथ! हे भक्तभयभञ्जन! आप मुझपर प्रसन्न होइये। परमेश्वर! मुझे अपने चरणकमलोंकी दास्य-भक्ति दीजिये। भक्तोंको अभय देनेवाले गोविन्द! अपके पिताजीने मुझे बहुत धन दिया है; किंतु उस धनसे मेरा क्या प्रयोजन है? आप मुझे अपनी अविचल भक्ति प्रदान कीजिये। प्रभो! अणिमादि सिद्धियोंमें, योगसाधनोंमें, अनेक प्रकारकी मुक्तियोंमें, ज्ञानतत्त्वमें अथवा अमरत्वमें मेरी तनिक भी रुचि नहीं है॥

इन्द्रत्वे वा मनुत्वे वा स्वर्गलोकफले चिरम्।
नास्ति मे मनसो वाञ्छा त्वत्पादसेवनं विना॥
सालोक्यं सार्ष्टिसारूप्ये सामीप्यैकत्वमीप्सितम्।
नाहं गृह्णामि ते ब्रह्मंस्त्वत्पादसेवनं विना॥
गोलोके वापि पाताले वासे नास्ति मनोरथः।
किं तु ते चरणाम्भोजे संततं स्मृतिरस्तु मे॥

इन्द्रपद, मनुपद तथा चिरकालतक स्वर्गलोकरूपी फलके लिये भी मेरे मनमें कोई इच्छा नहीं है। मैं आपके चरणोंकी सेवा छोड़कर कुछ नहीं चाहता। सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य और एकत्व—ये पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ सभीको अभीष्ट हैं। परंतु परमात्मन्! मैं आपके चरणोंकी सेवा छोड़कर इनमेंसे किसीको भी ग्रहण करना नहीं चाहता। मैं गोलोकमें अथवा पातालमें निवास करूँ, ऐसा भी मेरा मनोरथ नहीं है; परंतु मुझे आपके चरणारविन्दोंका निरन्तर चिन्तन होता रहे, यही मेरी अभिलाषा है।

त्वन्मन्त्रं शंकरात् प्राप्य कतिजन्मफलोदयात्।
सर्वज्ञोऽहं सर्वदर्शी सर्वत्र गतिरस्तु मे॥

कृपां कुरु कृपासिन्धो दीनबन्धो पदाम्बुजे।
रक्ष मामभयं दत्त्वा मृत्युर्मे किं करिष्यति॥
सर्वेषामीश्वरः शर्वस्त्वत्पादाम्भोजसेवया।
मृत्युञ्जयोऽन्तकारश्च बभूव योगिनां गुरुः॥

कितने ही जन्मोंके पुण्यके फलका उदय हुआ, जिससे भगवान् शंकरके मुखसे मुझे आपके मन्त्रका उपदेश प्राप्त हुआ। उस मन्त्रको पाकर मैं सर्वज्ञ और समदर्शी हो गया हूँ। सर्वत्र मेरी अबाध गति है। कृपासिन्धो! दीनबन्धो! मुझपर कृपा कीजिये। मुझे अभय देकर अपने चरणकमलोंमें रख लीजिये। फिर मृत्यु मेरा क्या करेगी? आपके चरणारविन्दोंकी सेवासे ही भगवान् शंकर सबके ईश्वर, मृत्युञ्जय, जगत्का अन्त करनेवाले तथा योगियोंके गुरु हुए हैं॥

ब्रह्मा विधाता जगतां त्वत्पादाम्भोजसेवया।
यस्यैकदिवसे ब्रह्मन् पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश॥
त्वत्पादसेवया धर्मः साक्षी च सर्वकर्मणाम्।
पाता च फलदाता च जित्वा कालं सुदुर्जयम्॥
सहस्रवदनः शेषो यत्पादाम्बुजसेवया।
धत्ते सिद्धार्थवद् विश्वं शिवः कण्ठे विषं यथा॥

ब्रह्मन्! जिनके एक दिनमें चौदह इन्द्रोंका पतन होता है, वे जगत्-विधाता ब्रह्मा आपके चरणकमलोंकी सेवासे ही उस पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं। आपके चरणोंकी सेवा करके ही धर्मदेव समस्त कर्मोंके साक्षी हुए हैं; सुदुर्जय कालको जीतकर सबके पालक और फलदाता हुए हैं। आपके चरणारविन्दोंकी सेवाके प्रभावसे ही सहस्त्र मुखोंवाले शेषनाग सम्पूर्ण विश्वको सरसोंके एक दानेकी भाँति सिरपर धारण करते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे भगवान् शिव कण्ठमें विष धारण करते हैं॥

सर्वसम्पद्विधात्री या देवीनां च परात्परा।
करोति सततं लक्ष्मीः केशैस्त्वत्पादमार्जनम्॥
प्रकृतिर्बीजरूपा सा सर्वेषां शक्तिरूपिणी।
स्मारं स्मारं त्वत्पदाब्जं बभूव तत्परा वरा॥
पार्वती सर्वरूपा सा सर्वेषां बुद्धिरूपिणी।
त्वत्पादसेवया कान्तं ललाभ शिवमीश्वरम्॥

जो सम्पूर्ण सम्पदाओंकी सृष्टि करनेवाली तथा देवियोंमें परात्परा हैं, वे लक्ष्मीदेवी अपने केश-कलापोंसे आपके चरणोंका मार्जन करती हैं। जो सबकी बीजरूपा

हैं, वे शक्तिरूपिणी प्रकृति आपके चरणकमलोंका चिन्तन करते-करते उन्हींमें तत्पर हो जाती हैं। सबकी बुद्धिरूपिणी एवं सर्वरूपा पार्वतीने आपके चरणोंकी सेवासे ही महेश्वर शिवको प्राणवल्लभके रूपमें प्राप्त किया है॥

विद्याधिष्ठात्री देवी या ज्ञानमाता सरस्वती।
पूज्या बभूव सर्वेषां सम्पूज्य त्वत्पदाम्बुजम्॥
सावित्री वेदजननी पुनाति भुवनत्रयम्।
ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च मतिस्त्वत्पादसेवया॥
क्षमा जगद् विभर्तुं च रत्नगर्भा वसुन्धरा।
प्रसूतिः सर्वशस्यानां त्वत्पादपद्मसेवया॥

विद्याकी अधिष्ठात्री देवी जो ज्ञानमाता सरस्वती हैं, वे आपके चरणारविन्दोंकी आराधना करके ही सबकी पूजनीया हुई हैं। जो ब्रह्माजी तथा ब्राह्मणोंकी गति हैं, वे वेदजननी सावित्री आपकी चरणसेवासे ही तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। पृथ्वी आपके चरणकमलोंकी सेवाके प्रभावसे ही जगत्‌को धारण करनेमें समर्थ, रत्नगर्भा तथा सम्पूर्ण शस्योंको उत्पन्न करनेवाली हुई है॥

राधा समांशसम्भूता तव तुल्या च तेजसा।
स्थित्वा वक्षसि ते पादं सेवतेऽन्यस्य का कथा॥
यथा शर्वादयो देवा देव्यः पद्मादयो यथा।
सनाथं कुरु मामीश ईश्वरस्य समा कृपा॥
न यास्यामि गृहं नाथ न गृह्णामि धनं तव।
कृत्वा मां रक्ष पादाब्जसेवायां सेवकं रतम्॥

आपकी अंशभूता तथा आपके ही तुल्य तेजस्विनी राधा आपके वक्षःस्थलमें स्थान पाकर भी आपके चरणोंकी सेवा करती हैं; फिर दूसरेकी क्या बात है? ईश! जैसे शिव आदि देवता और लक्ष्मी आदि देवियाँ आपसे सनाथ हैं, उसी तरह मुझे भी सनाथ कीजिये; क्योंकि ईश्वरकी सबपर समान कृपा होती है। नाथ! मैं घरको नहीं जाऊँगा। आपका दिया हुआ यह धन भी नहीं लूँगा। मुझ अनुरागी सेवकको अपने चरणकमलोंकी सेवामें रख लीजिये॥

इति स्तुत्वा साश्रुनेत्रः पपात चरणे हरेः।
रुरोद च भृशं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा जहास भक्तवत्सलः।
उवाच तं स्वयं कृष्णो मयि ते भक्तिरस्त्विति॥
इदं गर्गकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं स्मृतं च लभते ध्रुवम्॥

इस प्रकार स्तुति करके गर्गजी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए श्रीहरिके चरणोंमें गिर पड़े और जोर-जोरसे रोने लगे। उस समय भक्तिके उद्रेकसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। गर्गजीकी बात सुनकर भक्तवत्सल श्रीकृष्ण हँस पड़े और बोले—'मुझमें तुम्हारी अविचल भक्ति हो।' जो मनुष्य गर्गजीद्वारा किये गये इस स्तोत्रका तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह श्रीहरिकी सुदृढ़ भक्ति, दास्यभाव और उनकी स्मृतिका सौभाग्य अवश्य प्राप्त कर लेता है।

जन्ममृत्युजरारोगशोकमोहादिसङ्कटात् ।
तीर्णो भवति श्रीकृष्णदाससेवनतत्परः ॥
कृष्णस्य सह कालं च कृष्णसार्धं च मोदते ।
कदाचिन्न भवेत् तस्य विच्छेदो हरिणा सह ॥

इतना ही नहीं, वह श्रीकृष्णभक्तोंकी सेवामें तत्पर हो जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, शोक और मोह आदिके संकटसे पार हो जाता है। श्रीकृष्णके साथ रहकर सदा आनन्द भोगता है और श्रीहरिसे कभी उसका वियोग नहीं होता॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते गर्गकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३। १९३—२१८)

❑❑